अङ्क-२७
जनवरी-जून २०१६

वेदविद्या
ISSN-2230-8962

महाकविकालिदासवर्णित 'विश्वजित्' यज्ञ-विमर्श

डॉ. सदानन्द त्रिपाठी

कालिदासस्य साहित्ये विविधायामसूचकाः।
मीमांस्यन्ते विशेषेण श्रौतसूत्रप्रमाणकैः ॥१॥
रघुवंशे महाकाव्ये कालिदासेन वर्णितः ।
विश्वजिन्नामको यज्ञः शोधपत्रे विमृश्यते ॥२॥

- 'दयालू' पाह्वस्य सदानन्दत्रिपाठिनः

विश्ववारा भारतीय सनातन-आर्ष-वैदिक-संस्कृति त्यागप्रधान यज्ञसंस्कृति के स्वरूप में समादृत है। यज्ञ मानवजीवन का श्रेष्ठतम कर्म है;- **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'**[१]। यज्ञ से न केवल व्यष्टि का अपितु समष्टि का सर्वविध पोषण होता है। अनादिकाल से पुण्यभूमि कर्मभूमि भारतवर्ष के ऋतम्भराप्रज्ञासम्पन्न मन्त्रद्रष्टा ऋषि-मुनि-विप्रगण इन श्रौत-स्मार्त्तादि यज्ञों का सविधि अनुष्ठान-आयोजन विश्वकल्याण की मङ्गलकामना से निरन्तर करते चले आ रहे हैं। परिणामतः यह आर्यावर्त्त, भारतदेश समग्र विश्व के लिये पावन 'तीर्थ' बन गया। आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान, सदाचारपरायणता के कारण 'विश्वधर्मगुरु' के महनीय पद पर सुप्रतिष्ठित रहा। अपौरुषेय वेद एवं वैदिकवाङ्मय से लेकर अधुनातन संस्कृतसाहित्य में यज्ञीय वर्णन का प्राचुर्य विद्यमान है। आदिकवि महर्षि प्राचेतसवाल्मीकि, कृष्णद्वैपायन भगवान् वेदव्यास द्वारा प्रणीत क्रमशः श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण तथा महाभारत, पुराणेतिहास-साहित्य आदि में निखिल चराचर विश्वोपकारक यज्ञीय माहात्म्य का विशद सविस्तार वर्णन निर्दिष्ट है।

भ्वादिगणपठित उभयपदी सेट् 'यज' धातु '**देवपूजासङ्गतिकरणदानेषु**' (१०७४ धातुक्रमाङ्क) अर्थात् देवपूजा, सङ्गतिकरण एवं दान के अर्थ में प्रयुक्त होती है जिसमें **'यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्'** पाणिनीयसूत्र ३/३/९० द्वारा 'नङ्' प्रत्यय करने पर 'यज्ञ' शब्द निष्पन्न होता है। पुराणों में **विश्वजित्** यज्ञ को सारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला बताया गया है। इसे सूर्यवंशी राजा रघु ने किया था। 'पद्मपुराण' में विस्तार के साथ इस घटना का वर्णन प्राप्त होता है।[२]

'मत्स्यपुराण' में यज्ञ का लक्षण इस प्रकार बताया गया है ;-

देवानां द्रव्यहविषां ऋक्सामयजुषां तथा ।
ऋत्विजां दक्षिणानां च संयोगो यज्ञ उच्यते ॥[३]

---

[१] शतपथब्राह्मणम् १.७.३.५
[२] वेदकथाङ्क, कल्याण-परिशिष्टाङ्क, पृष्ठ ३४५
[३] मत्स्यपुराणम्

जिस कर्म-विशेष में देवता, हवनीयद्रव्य, वेदमन्त्र, ऋत्विक् एवं दक्षिणा इन पाँच उपादानों का संयोग हो उसे 'यज्ञ' कहते हैं।

ईसापूर्व प्रथमशताब्दी में इसी अवन्ती-महाजनपद के न्यायप्रिय शासक नृपतिवरवीर विक्रमादित्य महाराज के परमश्रद्धास्पद, सभारत्नशिरोमणि, कविताकामिनीविलास महाकविकालिदास ने अपनी पूर्ववर्त्ती उदात्तकविपरम्परा के उच्चतम आदर्शों का सर्वात्मना अनुसरण, परिपालन करते हुए, स्वकीय काव्य-नाट्यग्रन्थरत्नों में उपमौचित्य प्रयोग करते हुये श्रौतानुष्ठान-सन्दर्भों की समायोजना यथावसर प्राप्त प्रसङ्गानुसार सन्निविष्ट की है।

'रघुवंशमहाकाव्य' में वर्णित अयोध्यानरेश महाराज दिलीप द्वारा सपत्नीक कामधेनुपुत्री नन्दिनी गौ की पुत्ररत्नप्राप्त्यर्थ विहित गोसेवा श्रौतसूत्रादि ग्रन्थों में वर्णित गवामयनयाग, गो-सव (गो-यज्ञ) का ही अनुष्ठेय उपदेश है। इक्ष्वाकुकुलपुरोहित, वैदिकमन्त्रद्रष्टा महर्षिवसिष्ठ की आज्ञा से सुदक्षिणा-दिलीप-दम्पती द्वारा प्राणपण से अनुष्ठित इस दिव्य गोसेवा-अनुष्ठान के फलस्वरूप राजकुमार रघु का जन्म होता है। सम्पूर्ण संस्कार श्रौतविधि-विधान से सम्पादित किये जाते हैं। क्रमशः जब कुमार रघु युवावस्था को प्राप्त हो जाते हैं तब महाराज दिलीप उनका 'यौवराज्याभिषेक' करके अयोध्या की राजसत्ता उन्हें सौंपकर इक्ष्वाकुवंश-परम्परा-अनुरूप स्वयं सपत्नीक वानप्रस्थाश्रम-दीक्षा लेकर तपोवन की ओर प्रस्थित हो जाते हैं। इधर ; राज्याभिषेकोपरान्त रघु एक परमादर्श प्रजापालक, चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में सम्पूर्ण दायित्वों का निर्वहण करते हुये 'दिग्विजय-अभियान' की सङ्कल्पना के साथ ससैन्य निकल पडते हैं। इस विश्वविश्रुत सोद्देश्य 'दिग्विजय महाभियान' की सफल परिपूर्णता के पश्चात् महाराज रघु हमारे प्रतिपाद्य **'विश्वजित्'** नामक श्रौतयाग का सविधि आयोजन-अनुष्ठान सम्पादित करते हैं जिसमें विश्वकल्याणार्थ लोकमङ्गलकामना से यज्ञसम्पादक आचार्य, ब्रह्मा, होता, अध्वर्यु तथा उद्गाता आदि ऋत्विग्-गणों को दक्षिणा के रूप में अयोध्या के राजकोष में पूर्वोपात्त तथा स्वोपार्जित सर्वस्व धनराशि का निःस्पृहभाव से समर्पण कर दिया; क्योंकि सज्जन-महानुभावों का सङ्ग्रह भी लोकोपकारार्थ मेघों की जलवर्षा के समान ही होता है;-

स विश्वजितमाजह्रे यज्ञं सर्वस्वदक्षिणम् ।
आदानं हि विसर्गाय सतां वारिमुचामिव ॥[४]

यजमान द्वारा **'विश्वजित्'** यज्ञ में दक्षिणास्वरूप सर्वस्व दान कर देना चाहिए। एतद्विषयक भगवतीश्रुति-वाक्यप्रमाण 'सञ्जीविनी'टीकाकार आचार्यश्रीमल्लिनाथसूरि ने उद्धृत किया है;-

'विश्वजित् सर्वस्वदक्षिणः' इति श्रुतेः।[५]

अर्थात् श्रुतिवचन-प्रमाणानुसार जिस यज्ञ (सोमयाग) में याचक के प्रति सर्वस्व (दक्षिणारूप में) समर्पित कर दिया जाये, उसे **'विश्वजित्'** यज्ञ कहते हैं।

---

[४] रघुवंशम् ४/८६

[५] रघुवंशम्, सर्गः ४/८६ "सञ्जीविनी" व्याख्यायाम्

जिस समय महाराज रघु **'विश्वजित्'** यज्ञ में अपना सर्वस्व दान में समर्पित कर चुके थे, उसी समय कुत्सऋषिपुत्र, वरतन्तुशिष्य कौत्स ऋषि गुरुदक्षिणा प्रदान करने के लिए धनयाचनार्थ उनके सम्मुख उपस्थित हुए ;-

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं निःशेषविश्राणितकोषजातम् ।
उपात्तविद्यो गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः प्रपेदे वरतन्तुशिष्यः ॥[६]

श्रौतयज्ञनिष्ठ महाकविकालिदास तीसरी बार अज-इन्दुमती स्वयंवरप्रसङ्ग में दासी सुनन्दा के द्वारा भोजराज-अनुजा इन्दुमती को अज के पूज्य पिता महाराज रघु द्वारा सम्पादित किये विश्वजिद् महायज्ञ के बारे में बतलाये हुये लिखते हैं कि अयोध्यानरेश, महाराज दिलीप के पुत्र रघु उनके पश्चात् राजा हुए हैं जिन्होंने चारों दिशाओं में विजयश्री प्राप्त करके एकत्रित की हुई अपार धनराशि **'विश्वजित्'** नामक यज्ञ में ब्राह्मणों को दान में देकर अपने पास केवल मिट्टी के पात्र को ही शेष रखा था;

पुत्रो रघुस्तस्य पदं प्रशास्ति महाक्रतोर्विश्वजितः प्रयोक्ता ।
चतुर्दिगावर्जितसम्भृतां यो मृत्पात्रशेषामकरोद्विभूतिम् ॥[७]

महाकविकालिदास द्वारा वर्णित **'विश्वजित्'** नामक यज्ञ सोमयाग नाम से प्रथित है। यह विकृतियाग के अन्तर्गत परिगणित होता है। 'मीमांसाशास्त्र' के अनुसार – जिस याग के विषय में समस्त अङ्गों का उपदेश (कथन) प्राप्त होता है उसे 'प्रकृतियाग' कहा जाता है तथा जिसके विषय में समस्त अङ्गों का कथन प्राप्त नहीं होता है, उसे 'विकृतियाग' नाम से अभिहित किया जाता है।

"यत्र समग्राङ्गगोपदेशः सा प्रकृतिः । यत्र न समग्राङ्गगोपदेशः सा विकृतिः।[८]

सोमयाग चार प्रकार का होता है- (१) एकाहः (२) अहीनः (३) साद्यस्क्रः और (४) सत्र। सोमयाग में एक, तीन, चार, बारह अथवा अपरिमित दीक्षाएँ सम्पन्न की जाती हैं। एक दिन में कर्त्तव्यता से विहित नियम का यथावत् अनुष्ठान सम्पादित करना एक दीक्षा होती है। इसके पश्चात् जितने दिन पूर्वोक्तानुसार पृथक्-पृथक् दिनों में विहित नियमानुसार यथावत् अनुष्ठान सम्पन्न किये जाते हैं; वे उतनी सङ्ख्या में दीक्षा नाम से ही जाने जाते हैं। तदनन्तर तीन दिन में, छह दिन में, अथवा बारह दिनों में उपसद का अनुष्ठान करना चाहिए। उनमें से एकाह ज्योतिष्टोम आदि में तीन, चयन में छह, अहीनयागादि में द्वादश (बारह) उपसद का विधान किया गया है। उनमें भी दीक्षोपसदाओं का अनेक दिन में अनुष्ठेयत्व विधान होने पर भी एक ही दिन में जो सोमयागानुष्ठान सम्पन्न कर लिया जाता है, उसे 'एकाह' सोमयाग कहते हैं। सोमयाग का दो अथवा तीन दिनों में पौनःपुन्येन आवृत्तिपूर्वक

---

[६] रघुवंशम् ५/१

[७] (क) रघुवंश महाकाव्यम् सर्गः ६; पद्यम् ७६
(ख) हेमाद्रिकृत 'रघुवंशदर्पणः' संस्कृतटीका, पृष्ठं १५२
(ग) भारतीयराजनीतिकोशः - कालिदासखण्डः, पृष्ठं ३६

[८] आचार्यलौगाक्षिभास्करः, अर्थसङ्ग्रहः, पृष्ठं ३४

अनुष्ठान जिसमें सम्पन्न किया जाता है, वह 'अहीन' सञ्ज्ञक कहा जाता है। दो रात से लेकर दस रात पर्यन्त 'अहीन' याग सम्पन्न होता है। ग्यारहवीं तथा बारहवीं – इन दोनों रातों में सम्पन्न होने वाला याग 'उभयात्मक' सोमयाग के नाम से जाता है। कोई-कोई आचार्य बारह रातों में सम्पन्न याग को ही 'उभयात्मक' सोमयाग मानते हैं। तेरह रातों (दिनों) से प्रारम्भ करके एक हजार वर्ष पर्यन्त सम्पन्न होने वाले सोमयाग को 'सत्र'- (सत्रों) के नाम से उच्चरित किया जाता है। एक ही दिन में सङ्कल्पविधि से प्रारम्भ करके यज्ञान्त अवभृथस्नान पर्यन्त का अनुष्ठान जिसमें सविधि सम्पादित होता है, उसे 'साद्यस्क्रः' (सद्यः= शीघ्र सम्पन्न किये जाने से) नाम से सम्बोधित किया जाता है।[९]

'सत्र' नामक सोमयाग के दो प्रकार-भेद हैं- (१) रात्रिसत्र और (२) अयनसत्र। जो सोमयाग बारह दिन से लेकर एक सौ दिन पर्यन्त सविधि अनुष्ठित होता है, उसे 'रात्रिसत्र' कहते हैं। पुनः, एतदनन्तर जो एक सौ दिन से लेकर आगामी काल तक अयनपर्यन्त सम्पन्न होता है उसे 'अयनसत्र' कहते हैं। सोमयाग के अनुष्ठानप्रकार का सङ्क्षेप में वर्णन है कि इसके आरम्भकाल में दो पक्ष हैं। प्रथम पक्ष के मतानुसार जिस अनाहिताग्नि अर्थात् जिसने अभी तक विध्यनुसार अग्निदीक्षा नहीं लेकर गार्हपत्यादि पञ्च अग्नियों का आधान नहीं किया और ना ही नियमित सविधि अग्निहोत्र ही करना प्रारम्भ किया है-ऐसा सोमयागानुष्ठान के प्रति समुदित उत्कट तीव्र इच्छा वाला यजमान वसन्त-ऋतु में सोमयागोचित काल का निर्धारण करके सर्वप्रथम सप्तमी, अष्टमी अथवा दशमी तिथि में दीक्षापक्षानुसार सङ्कल्प करके अग्न्याधान के अग्न्याधानविधि से पूर्वोक्त (गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, आवसथ्य तथा सभ्य नामक) अग्नियों का आधान करके तदनन्तर सोमयाग के लिये सङ्कल्प करके उसे यथाविधि सम्पादित करे; ऐसा एक पक्ष का अभिमत है।[१०]

सोमयाग के दूसरे पक्ष के अनुसार- एतदर्थ पूर्ववत् अग्न्याधान के लिये निर्धारित कालनिर्धारण की अपेक्षा नहीं होती है। अथवा, अग्न्याधान के लिये विहित काल में यथावत् अग्नियों का आधान करके अग्निहोत्रपूर्वक दर्शपूर्णमास-पशु-चातुर्मास्य-आदि यागों का यथाकाल अनुष्ठान करते हुये, वसन्त-ऋतु में सोमयागसामग्री-सम्पत्ति की उपलब्धता में सोमयाग का अनुष्ठान करे, यह अपर (द्वितीय) पक्ष है।

सोमयाग का अधिकारी वह होता है जिसने तैत्तिरीयारण्यक २/२ में वर्णित – **'यद्देवा देवहेडनम्०**' इत्यादि कूश्माण्ड-सञ्ज्ञक मन्त्रों से **'कूश्माण्ड-इष्टि'** तथा **'पवित्रेष्टि'** आदि के सविधि अनुष्ठान, जप-होम, पुण्यतीर्थस्थानों में स्नान-दानादि पावन कर्मों से स्वयं को शुद्ध कर लेता है, चराचर जागतिक प्राणियों के प्रति जिसमें निर्वैरभाव हो, विश्वकल्याण की मङ्गलकामना जिसके अन्तःकरण में विद्यमान हो, ऐसा साधक सोमयागानुष्ठान का अधिकारी होता है। जिसके पिता अथवा पितामह द्वारा सोमयागानुष्ठान नहीं किया गया है; ऐसा त्रिपुरुषसोमपानविच्छेदी पुरुष सोमयागानुष्ठान में सर्वथा त्याज्य, हेय है। इसी प्रकार, जिसके पिता, पितामह ने न तो कभी श्रीगुरुचरणों में उपसत्तिपूर्वक साङ्गोपाङ्ग वेद भगवान् का

---

[९] म.म. आचार्यश्रीचिन्नस्वामीशास्त्री, यज्ञतत्त्वप्रकाशः, द्वितीयो भागः, पृष्ठं ४८

[१०] तदेव, यज्ञतत्त्वप्रकाशः, द्वितीयो भागः, पृष्ठं ४८

स्वाध्याय (परायण) किया है अथवा न कभी श्रौतहविर्यज्ञों का अनुष्ठान ही किया है; ऐसा दुर्ब्राह्मण कहा जाता है, वह कथमपि सोमयागानुष्ठान का अधिकारी नहीं हो सकता है। अतएव, पूर्वोक्त दोषद्वय के परिहारार्थ ऐन्द्राग्नपशुयाग, आश्विनपशुयाग का अनुष्ठान करके अधिकारप्राप्तिपूर्वक सोमयाग का अनुष्ठान सम्पन्न करे। उसमें अपने साथ त्रिपुरुषसोमपान के अभाव में 'ऐन्द्राग्नपशुयाग' का अनुष्ठान करे- यह वैदिक ऋषि कात्यायन का अभिमत है।[११]

अपने को छोड़कर पूर्व तीनों पूर्वजों का आनुपूर्वीक्रम से पूर्वोक्तानुसार अनुष्ठान करने से वह सोमयागानुष्ठान का अधिकारी हो जाता है; यह आपस्तम्ब ऋषि का वचन है।[१२] इस प्रकार वेदी और वेद का त्रिपुरुषविच्छेद ही आश्विन-पशु-पदवाच्य है। इस सम्बन्ध में दोनों प्रकार से अनुष्ठान किया जाये; ऐसी भी आपस्तम्बाचार्य की मान्यता है। केवल द्वितीय प्रकार का ही अनुष्ठान मान्य है, ऐसा कातीयवचन है।[१३]

'कात्यायनश्रौतसूत्र' के 'एकाहनिरूपणम्' नामक बाईसवें अध्याय में सूत्रकार ने भू से लेकर वज्र तक सतहत्तर ७७ एकाहयाग उल्लिखित किये हैं। इनमें यजमान एक तथा सोलह ऋत्विक् होते हैं। अग्निष्टोम, उक्थ्य, षोडशी और अतिरात्र सामों में से किसी एक से इनकी समाप्ति होती है। इनमें प्रथम 'भू' नामक एकाह अग्निष्टोम संस्था वाला है। 'ज्योति' नामक द्वितीय एकाह अग्निष्टोम संस्था वाला है। 'गौ' नामक तृतीय एकाह उक्थ्य संस्था वाला है। चौथा 'आयु' नामक एकाह उक्थ्य संस्थाक है। पञ्चम 'अभिजित्' तथा हमारा प्रतिपाद्य षष्ठ एकाह **'विश्वजित्'** याग है; ये दोनों अग्निष्टोम संस्था वाले हैं। इन दोनों का पृथक्-पृथग् अनुष्ठान होता है अथवा साथ ही होता है। ये दो पक्ष हैं। **'विश्वजित्'** सोमयाग (एकाह) में सर्वस्व-दक्षिणा का सहस्रदक्षिणा के साथ विकल्प किया गया है। सर्वस्व-दक्षिणा हो अथवा सहस्रदक्षिणा ।

"अथैकाहानां स्वरूपं लिख्यते। एकदिनसाध्यसुत्याक एकानेकदीक्षाकस्त्र्युपसत्को वा द्वादशोपसत्को वा सोमयाग एकाह इत्युच्यते। ते चैकाहा द्वाविंशेऽध्याये भूप्रभृतिवज्रान्ताः सप्तसप्ततिसङ्ख्याका निरूपिता सूत्रकारेण।

यद्यपीमेऽस्माकं माध्यन्दिनशाखीयानां ब्राह्मणे शतपथे न पठितास्तथापि छान्दोगब्राह्मणे ताण्ड्यादौ पठितास्तत एवोद्धृत्यात्र सूत्रकारेण निवेशिताः। अत्र यजमान एक एव। ऋत्विजः षोडश। अग्निष्टोमाद्यन्यतमसङ्ख्याका इमे भवन्ति।..... तत्र प्रथमं भूर्नामैकाहोऽग्निष्टोमसंस्थः १. द्वितीयो ज्योतिरग्निष्टोमसंस्थः २. तृतीयो गौरुक्थ्यसंस्थः ३. चतुर्थ आयुरुक्थ्यसंस्थः ४. पञ्चमोऽभिजित् ५. षष्ठो

---

[११] तदेव, यज्ञतत्त्वप्रकाशः, द्वितीयो भागः, पृष्ठं ४९

[१२] तदेव, यज्ञतत्त्वप्रकाशः, पृष्ठं ४९

[१३] तदेव, यज्ञतत्त्वप्रकाशः, पृष्ठं ४९

विश्वजित् ६. एतावग्निष्टोमसंस्थौ। अनयोः पृथक् पृथगनुष्ठानं सहैव वेति पक्षद्वयम्। अत्र विश्वजिति सर्ववेदसदक्षिणा सहस्रदक्षिणया सह विकल्पिताः।[१४]

महर्षिकात्यायन ने **'विश्वजिद्याग'** की दक्षिणा के सम्बन्ध में स्वविरचित सूत्र का निर्देश किया है;-

सहस्र ठँ० सर्ववेदसं विश्वजितः ॥९॥

विद्याधरीसरलावृत्तिः

सहस्र-सर्वधनयोर्विकल्पः । कर्मारम्भे सर्वधनस्य त्रेधा विभागः कार्यः। एको भागो जीवनार्थः, अपरः क्रतुसिद्ध्यर्थः, तृतीयो दक्षिणार्थ इति मीमांसकाः ॥९॥

अर्थात् सहस्र और सर्वधन में विकल्प है। **विश्वजिद्** याग के आरम्भ में सम्पूर्ण सङ्गृहीत धन के तीन विभाग करना चाहिये। एक भाग यजमान के जीवन-यापन के लिये, दूसरा भाग सविधि विश्वजिद्याग सम्पादित करने के लिये तथा तीसरा भाग ऋत्विग्-गण को दक्षिणा प्रदान करने के लिये सम विभाजित करके रखे; ऐसा मीमांसाशास्त्रविदों का कथन है।[१५]

डॉ. सदानन्द त्रिपाठी
शासकीय संस्कृत महाविद्यालय,
उज्जैन (म.प्र.) ४५६००१

[१४] श्रौतयज्ञपरिचयः,एकाहयागनिरूपणम्,पृष्ठं ६६-६७, लेखकः याज्ञिकसम्राट् स्व.पं. श्रीवेणीरामशर्मा गौडः, वाराणसी

[१५] कात्यायनश्रौतसूत्रम्, एकाहनिरूपणम् अध्यायः २२, प्रथमाकण्डिका, ९ सूत्रम्, विद्याधरीसरलावृत्ति;
प्रकाशकः - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठानम्, जवाहरनगरम्, नवदेहली-७, द्वितीयसंस्करणम्, २००५ खिस्ताब्दः